# डॉ. आंबेडकर का सांस्कृतिक पुनर्जागरण

–प्रवीण कुमार मिश्र[1]

**प्रस्तावना :**

19वीं शताब्दी भारत में पुनर्जागरण का प्रारंभिक समय रहा है। 'पुनर्जागरण' की वैचारिकी और शब्द दोनों ही यूरोप से लिए गए हैं। पुनर्जागरण में न केवल बौद्धिक विचारों के माध्यम से सामाजिक जागरूकता की बात की गई बल्कि साहित्य, कला, विज्ञान और आर्थिक गतिविधियों का भी स्वागत किया गया। पुनर्जागरण का आधार अतीत के सारगर्भित गौरव या 'जागरण' को याद करते हुए, मध्ययुगीन ईसाईयत की जीर्ण प्रथाओं और दकियानूसी व्यवस्था की जकड़ से समाज को बाहर निकालकर उसे मानवता, तर्क व विज्ञान की कसौटी पर एक नूतन समाज की परिकल्पना करना निहित था। यह वह दौर था जब टामस मोर ने 'यूटोपिया' में एक नए समाज की परिकल्पना करते हैं। इस समय न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण सिद्धांत, गैलीलियो द्वारा किया गया दूरबीन का आविष्कार, जहाँ विज्ञान को एक नई दिशा प्रदान कर रहा था, वहीं टामस मोर, मैकियावेली और फ्रांसिस बेकन जैसे साहित्यकारों द्वारा राजनैतिक व्यवस्था पर प्रहार किया जा रहा था। भारत में परिस्थितियाँ यूरोप के विपरीत थी। भारतीय समाज मध्यकालीन पतन की दहलीज पर खड़ा तो था लेकिन एक नई औपनिवेशिक व्यवस्था के अधीन हो चुका था। ऐसे में यूरोपीय पुनर्जागरण और उसके लेखन का प्रभाव भद्र भारतीय समाज पर दिखाई देता है। समाज एक ओर रूढ़ियों और प्रथाओं से जकड़ा हुआ तो था, लेकिन आने वाले दो सौ वर्षों के लिए गुलामी की जंजीरों से भी जकड़ चुका था।[2]

---

शोध छात्र, इतिहास विभाग, सामाजिक विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221005 (उत्तर प्रदेश)
Email : praveenishra@gmail.com

जहाँ तक सांस्कृतिक नवजागरण को भारत के संदर्भ में देखें तो यह कोई नयी बात नहीं है। समाज सांस्कृतिक इकाइयों से उससे जुड़ी मान्यताओं एवं परंपराओं से जुड़ा हुआ है। प्राचीन काल से ही समाज में सतही विभाजन देखने को मिलता है। कहीं यह विभाजन नस्ल, भूगोल एवं भाषाओं के आधार पर है तो कहीं पर विभिन्न वर्ण एवं जाति के आधार पर भी देखा जा सकता है। प्रत्येक जाति एवं वर्ग में कुछ अच्छाइयाँ होती हैं तो वहीं कुछ बुराइयाँ भी होती हैं। समय के साथ प्रत्येक समाज में समय-समय पर सामाजिक बुराइयों के विरुद्ध समाज में विमर्श चलता आ रहा है। प्राचीन काल में जहाँ जैन धर्म और बौद्ध दर्शन के द्वारा वैदिक धर्म की कुरीतियों एवं प्रथाओं की पुनर्व्याख्या की गई तो भक्ति काल में सूफी और भक्तिमार्गी सगुण एवं निर्गुण संतों के द्वारा धार्मिक कुरीतियों, परंपराओं एवं मान्यताओं के विरुद्ध आवाज़ उठाई गई। अंग्रेजों के आगमन के पूर्व से सामाजिक-धार्मिक चेतना व व्यक्तिगत स्वबोध की जो प्रक्रिया चली आ रही थी, वह हमें 19वीं शताब्दी के प्रारंभिक दौर में भी देखने को मिलता है। भारत में नूतन नवजागरण की वैचारिकी में धर्म, जाति एवं भाषागत विभेद दिखाई देता है, यहाँ एक ओर सुधारवादी  थे जो यूरोपीय समाज की तरह सामाजिक समानता, सामाजिक सुधार और आधुनिक शिक्षा की बात कर रहे थे, जिनमें राजा राममोहन राय, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, केशव चन्द्र सेन और सर सैयद अहमद खां प्रमुख थे। दूसरी ओर पुनरुत्थानवादी थे। पुनरुत्थानवादियों का मानना था कि अपने समाज में व्याप्त कुप्रथाओं के विरुद्ध अगर हमें सुधार करना है तो अपने प्राचीन सांस्कृतिक मूल्यों को समझना होगा। पुनरुत्थानवादी अपने प्राचीन समाज की अच्छाइयों को आधार बना कर वर्तमान में व्याप्त कुप्रथाओं और रूढ़ियों के विरुद्ध सुधार की बात कह रहे थे। भारत में अग्रणी पुनरुत्थानवादी सुधारकों में दयानन्द सरस्वती, विवेकानंद और रशीद अहमद गंगोई प्रमुख थे।[3] ऐसे ही सामाजिक सुधारकों में समाज के निचले तबके का आंदोलन था। यह आंदोलन सामाजिक समानता के लिए अपने ही समाज के उच्च वर्गीय जातियों, उनकी मान्यताओं और प्रथाओं के विरुद्ध था। महाराष्ट्र के ज्योतिबा फूले और भीमराव आंबेडकर व केरल में नारायण गुरु, के.पी. मेनन और वी. रामास्वामी नायकर प्रमुख निम्नवर्गीय सुधारक थे।

## बाबासाहेब भीमराव आंबेडकर और सांस्कृतिक नवजागरण

14 अप्रैल, 1891 में मध्यप्रदेश के महु में एक महार परिवार में जन्मे बाबा साहब भीमराव आंबेडकर की प्रारंभिक शिक्षा सतारा में ही संपन्न हुई। एलिफिस्टन स्कूल से

1907 में मैट्रिक करने के बाद मुंबई विश्वविद्यालय से 1912 में स्नातक की डिग्री आंबेडकर ने प्राप्त की। बड़ौदा नरेश सयाजीराव गायकवाड़ द्वारा प्रदत्त फेलोशिप पर भीमराव आंबेडकर कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय से 1915 में परास्नातक और 1916 में पीएचडी डिग्री प्राप्त करते हैं। यह शैक्षणिक सफर भले कुछ चंद अक्षरों में दिखाई दे रहा है लेकिन इसके पीछे बाबासाहेब को लंबे सामाजिक भेदभाव, छुआछूत और गरीबी जैसी अवस्थाओं से गुजरना पड़ा। बाबासाहेब मुख्य रूप से अर्थशास्त्र, कानून, धर्म तथा इतिहास विषय के विद्वान थे। शैक्षणिक सफर के दौरान 1916 में भारतीय 'जाति व्यवस्था' पर कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के व्याख्यान में उनकी समझ व महार जाति का उनका शैक्षणिक संघर्ष दिखाई देता है।[4]

आंबेडकर के कार्यों को उनके सांस्कृतिक नवजागरण को हम तीन भागों में बांट कर देखते हैंः

## 1. सामाजिक नवचेतना

आंबेडकर जब 1917 में भारत आए तो उस समय प्रथम विश्वयुद्ध चल रहा था। देश की राजनीति में तिलक और गोखले का दौर था और गांधी गुजरात में अहिंसा व सत्याग्रह की पृष्ठभूमि तैयार कर रहे थे जो खेड़ा और अहमदाबाद के आंदोलन में सत्य के प्रयोग के रूप में दृष्टिगोचर हुआ। इसी समय बाबासाहेब भीमराव आंबेडकर भी महाराष्ट्र में महार जाति के बीच अपने शैक्षणिक संघर्ष को पूर्ण कर सामाजिक संघर्ष के मैदान में उतर चुके थे। आंबेडकर एक दिन में लोकप्रिय नहीं हुए, उनके संघर्ष की औपचारिक शुरुआत 20 जुलाई, 1924 में बहिष्कृत हितकारिणी सभा की स्थापना से हुई। 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' की कार्यकारिणी अध्यक्षता स्वयं आंबेडकर ने संभाली। इस सभा के उपसभापति चिमनलाल सीतलवाद और सचिव नामदेव शिवतरकर थे।[5] बहिष्कृत हितकारिणी तथा आंबेडकर जी का सामाजिक सुधार की दिशा में पहला प्रयोग था।

सभा के अनुशासन पत्र में सभा के निर्माण का उद्देश्य लिखित था—

1. दलित समाज की अपनी एक संस्था होनी चाहिए।

2. हिंदू समाज को भी स्पृश्य और अस्पृश्यों के मध्य खाई को मिटाने का प्रयत्न करना चाहिए नहीं तो अपना राजनीतिक उद्देश्य प्राप्त करना कठिन है।

3. जब तक देश का एक बड़ा वर्ग दीनहीन दशा में पंगु बना हुआ है, तब तक देश भी दीनहीन हालत में ही रहेगा, इसीलिए पराये समाज के लोगों को दलित उन्नति के लिए कोशिश करनी चाहिए। बाबासाहेब का प्रारंभिक उद्देश्य अस्पृश्य समाज के सामाजिक गौरव में सुधार करना था। इसलिए उन्होंने छोटे-छोटे सामाजिक आयोजनों में

अस्पृश्यता को समाप्त करने की पहल की। इसी दिशा में मुंबई (बम्बई) में प्रदेश बहिष्कृत परिषद का अधिवेशन 17 मई, 1924 को हुआ। इस सभा में अध्यक्ष के रूप में डॉक्टर आंबेडकर ने अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में कहा था, ''राष्ट्र की गुलामी से, अस्पृश्य समाज की गुलामी की हालत बहुत ज्यादा दर्दनाक है, इस स्थिति को समाप्त करने के लिए पहले अस्पृश्यता को समाप्त करना होगा।''[6]

1922 में असहयोग आंदोलन समाप्त हो गया, लेकिन सरकारी नौकरी में बहिष्कार का जो दौर चला, वह उसके बाद भी जारी था। बाबासाहेब इसके विरुद्ध थे, उन्होंने 1926 में सतारा जिले के कोरेगांव तहसील के हिम्मतपुर गाँव में सातारा जिला महार परिषद को संबोधित करते हुए कहा, ''जैसे-जैसे अस्पृश्य जनों के हाथ में अधिकार आते जाएंगे, उनकी आर्थिक स्थिति सुधरेगी वैसे-वैसे उनकी प्रगति भी अधिक होगी। प्रगति संभव करने के लिए सरकारी अफसर बन जाना निमित एक साधन है। जो लोग यह कहते हैं कि सरकारी नौकरी छोड़ दो! वह आपके दिमाग में फितूर पैदा कर रहे हैं।''[7]

आंबेडकर का यह मानना था, ''अस्पृश्य तथा गैर-ब्राह्मण यदि दोनों समाज मिलकर अपनी प्रगति के लिए आंदोलन चलाते हैं तो वह उच्च वर्ग की गुलामी से जल्दी से जल्दी छुटकारा पा सकते हैं। मैं खुद मन और बुद्धि से इन ब्राह्मणों की दास्तान से मुक्त हो चुका हूँ।'' हालांकि आंबेडकर का बहिष्कृत हितकारिणी सभा अस्पृश्य वर्ग में चेतना फैलाने में प्रारंभ में उतना कारगर नहीं रही, लेकिन समकालीन बम्बई के गवर्नर लेस्ली विलसन द्वारा सहयोग के रूप में 250 रुपए का चेक बहिष्कृत हितकारिणी सभा को प्रदान किया गया। 3 अप्रैल, 1927 को बाबासाहेब भीमराव आंबेडकर द्वारा 'बहिष्कृत भारत' मूल मराठी समाचार-पत्र का प्रकाशन शुरू किया गया। आंबेडकर को इस पत्रिका का बहुतायत कॉलम खुद ही लिखना होता था, इसीलिए जब उनकी सामाजिक व्यस्तता बढ़ती गई तब उन्होंने इस पत्रिका का प्रकाशन 15 नवम्बर, 1929 को बंद कर दिया।[8] समाचार-पत्र के प्रकाशन के माध्यम से अस्पृश्य समाज में वैयक्तिकता व स्वाभिमान के साथ ही आंबेडकर द्वारा आत्मसम्मान के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा भी दी गई।

आंबेडकर के शुरुआती अस्पृश्य सामाजिक सुधार में महाड़ सत्याग्रह आंदोलन का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इस आंदोलन से आंबेडकर की लोकप्रियता न केवल बम्बई बल्कि महाराष्ट्र के बाहर भी फैलने लगी। समकालीन बम्बई की सरकार ने 4 अगस्त, 1923 को एस.के. बोले ने सभी सार्वजनिक जल उपलब्ध कराने वाले स्थलों, नदी, तालाब, हौज, स्कूल, दवाखानों, शिक्षा केंद्रों, न्यायालयों साथ ही अन्य सार्वजनिक स्थलों में प्रवेश प्रतिबंध को अबाध्य करते हुए प्रस्ताव पारित किया। इसी क्रम में महाड़ नगरपालिका

परिषद की ओर से चवदार नामक तालाब को सर्वसमाज के लिए खोलने का नोटिस लगाया गया।[9] लेकिन सवर्ण समाज द्वारा जब महाड़ में इस आदेश का विरोध हुआ तो भीमराव आंबेडकर ने अपने मानवीय अधिकार को हासिल करने के साथ ही सरकारी आदेश को अमल करते हुए तालाब का जल ग्रहण करने का निश्चय किया। इस संदर्भ में 19 मार्च, 1927 को सभा का आयोजन किया गया। इस सभा में महाराष्ट्र और गुजरात का 5,000 अस्पृश्य समाज इसमें सम्मिलित हुए। इस संदर्भ में आंबेडकर ने सभा को संबोधित किया, ''अगर हम महाड़ 'चवलदार' तालाब का पानी नहीं पियें तो हमारी जान के लाले नहीं पड़ जाएंगे। हम तो यह दिखा देना चाहते हैं कि औरों की तरह हम भी इंसान हैं। यह सभा समता का श्रीगणेश है। दो तत्त्वों पर हिंदू समाज की पुनर्रचना करनी चाहिए वह समता और जातिविहीनता है, जो जन्म से समान पैदा होते हैं, उसे मरने तक समान रहना चाहिए।'' अगले दिन 20 मार्च को पैदल जा कर बाबासाहेब आंबेडकर द्वारा महाड़ तालाब का जल ग्रहण किया गया। हालांकि सवर्णों के द्वारा तालाब का पुनः शुद्धिकरण किया गया। 25 मई, 1927 को आंबेडकर द्वारा एक कार्यक्रम आयोजित कर अस्पृश्य समाज द्वारा विधिवत विषमता पर आधारित मनुस्मृति ग्रंथ को जलाया गया।[10] आंबेडकर द्वारा किसी अंतिम सार्वजनिक सामाजिक आंदोलन के रूप में 2 मार्च, 1930 नासिक में कालाराम मंदिर प्रवेश आंदोलन ही था। इस आंदोलन में 15000 सत्याग्रहियों का जुलूस राम मंदिर की ओर बढ़ा लेकिन मंदिर संचालन समिति द्वारा मंदिर प्रवेश द्वार को बंद कर दिया गया। आंदोलन के एक महीने बाद 9 अप्रैल को राम मंदिर का जुलूस निकलने वाला था, अस्पृश्य लोग भी उसमें शामिल होना चाहते थे। तमाम विरोध के बावजूद अस्पृश्यों का एक जत्था जुलूस में शामिल हो गया जिसके कारण सवर्णों और दलितों के बीच में पथराव हुआ और बहुत से लोग घायल हुए।[11]

1920 से 1930 तक आंबेडकर का आंदोलन सामाजिक भेदभाव के विरुद्ध जमीन पर सीधे उतर कर कार्य करना था। इन कार्यों से ही आंबेडकर को महाराष्ट्र और उसके बाहर एक अलग पहचान मिलने लगी। लेकिन 30 जनवरी, 1930 बम्बई (मुंबई) के लोअर परेल क्षेत्र में 10 हजार जनता के बीच में आंबेडकर ने जो कहा वह नए दशक की नई भूमिका की शुरुआत थी, ''अंग्रेजी हुकूमत में सामाजिक समस्याओं को मिटा सकने वाला कोई कानून है ही नहीं, न ही बनाया जा सकता है, इसलिए हम सबको स्वराजवादी होना चाहिए। हमें अंग्रेजी सरकार पर विश्वास नहीं रखना बल्कि हमें स्वयं अपना उद्धार करना होगा। ऐसा राजनीतिक हुकूमत आने पर ही संभव है केवल परिधान व वेशभूषा बदलने से सामाजिक सुधार नहीं होता, सच्ची प्रगति तो राजनीतिक ताकत हाथ में आने से ही संभव हो पाती है।''

## 2. आंबेडकर का राजनीतिक नवजागरण

आंबेडकर को प्रथम गोलमेज सम्मेलन के लिए अस्पृश्यों का प्रतिनिधि बनाकर भेजने का फैसला अंग्रेजों ने लिया। इस संदर्भ में 2 अक्तूबर, 1930 को परेल में एक जनसभा का आयोजन किया गया। इस सभा में आंबेडकर ने कहा, ''हमने साइमन कमीशन को सहयोग दिया लेकिन उन्होंने हमारा साथ नहीं दिया। हमारी संख्या 20 प्रतिशत होते हुए भी उन्होंने हमें केवल आठ प्रतिशत का प्रतिनिधित्व देने का वादा किया।''[12] स्वराज तो अस्पृश्यों को भी चाहिए, लेकिन भावी संविधान में अस्पृश्यों को स्वाधीनता दिलाने की व्यवस्था पहले ही कर रखनी चाहिए। आंबेडकर ने लंदन पहुँच कर ब्रिटिश कोलोनियल आर्मी चीफ फिलिप चेकवुड से मुलाकात की। इस दौरान आंबेडकर फौज में अस्पृश्यों को भर्ती करने की माँग रखते हैं। गोलमेज सम्मेलन में आंबेडकर ने अस्पृश्य समाज को समान अधिकार, मानवीय अधिकार, जातिवादी पक्षपात से सुरक्षा, विधानसभा और सरकारी नौकरी में उनका प्रतिनिधित्व, रूढ़िवादी धारणाओं से सुरक्षा, केंद्रीय सरकार में विभाग और गवर्नर जनरल मंत्रिमंडल सदस्यों में अस्पृश्य प्रतिनिधित्व रखने की वकालत की।[13] इस प्रकार किसी विदेशी मंच पर भारतीय पिछड़े वर्ग का प्रतिनिधित्व करने का कार्य करने वाले वे पहले व्यक्ति थे। बाद के दोनों गोलमेज सम्मेलनों में आंबेडकर शामिल हुए लेकिन उनका प्रभाव उतना नहीं रहा। फेडरल स्ट्रक्चर कमेटी के सदस्य के रूप में दूसरे और तीसरे गोलमेज सम्मेलन में व्यापार संरक्षण समिति के सदस्य के रूप में सम्मिलित हुए। आंबेडकर की राजनैतिक सहभागिता जैसे-जैसे बढ़ती गयी, उतना ही मुखर होकर उन्होंने अस्पृश्यों के लिए काम किया। एक बार उन्होंने कहा था, ''यदि हमारे समाज का भविष्य सुधारने का मेरा प्रयत्न सफल नहीं हुआ तो या मुझे तनिक भी संदेह होगा तो मैं अपने पद से चिपका नहीं रहूँगा, तुरंत त्याग-पत्र देकर बाहर आ जाऊँगा।'' दलितों के पृथक निर्वाचन मण्डल के विरुद्ध महात्मा गांधी से 24 सितंबर, 1932 को पूना समझौता हो या मताधिकार की बात हो, आंबेडकर हमेशा अस्पृश्य समाज के लिए खड़े रहे। विधानसभा अधिवेशन में ग्राम सभा बिल पर बोलते हुए कहा, ''विधानभा में मेरे अपने समाज का प्रतिनिधित्व भिजवाने का मुझे अधिकार होना चाहिए। जातीय प्रतिनिधित्व संविधान की शोभा बढ़ाएंगे।''[14] 1930 में जो आंबेडकर मंदिर प्रवेश के लिए आंदोलन कर रहे थे, वही आंबेडकर अब 1933 में मद्रास में रँगा अय्यर मंदिर प्रवेश के मुद्दे पर बोलते हुए कहा, ''मंदिर प्रवेश जैसी छोटी-सी बात पर अस्पृश्यों को अपनी शक्ति नहीं गवानी चाहिए। मंदिर के दरवाजे खुलते हैं या नहीं खुलते, यह निजी सवाल सवर्णों के लिए हैं। इंसानियत की कीमत करना जानते हो तो मंदिर खोल

कर दिखाओ! हमें उच्च शिक्षा, नौकरी और अपने विवाह के लिए सामाजिक सामान्य मार्ग अपनाने का प्रयास करना चाहिए। इसका मतलब आंबेडकर सीधे तौर पर राजनीतिक गतिविधियों के माध्यम से अस्पृश्य सहभागिता को सुनिश्चित करना चाहते थे।[15]

1937 के प्रांतीय चुनाव में कांग्रेस का प्रचण्ड बहुमत होने के बाद भी बम्बई की 14 सीटों पर इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी की जीत हुई। 1942 में पहली बार वायसराय को काउंसिल में (1942-1946) श्रम मंत्री के रूप में आंबेडकर को नियुक्त किया गया। इसी बीच नागपुर में अखिल भारतीय दलित समाज का पहला अधिवेशन 19-20 जुलाई को आयोजित किया गया। 75 हजार लोगों के बीच में आंबेडकर ने अपने राजनीतिक कार्यों को बताया। साथ ही उन्होंने कहा, ''अस्पृश्य समाज को बराबरी का दर्ज़ा दिलवाने में सफलता पाना ही मेरी उपलब्धि है, आप लोग किसी के गुलाम न रहें, इसीलिए शासन की बागडोर आपको अपने हाथ में लेनी होगी।'' आंबेडकर चाहे बम्बई विधानसभा के सदस्य, विधान परिषद के सदस्य के रूप में, वायसराय की कार्यपरिषद के सदस्य के रूप में, भारतीय संविधान सभा प्रारूप समिति हो या संविधान सभा के सदस्य के रूप में हों, उन्होंने हमेशा अस्पृश्य समाज को समाज की मुख्य धारा से जोड़ने का प्रयास किया।[16] देश की आज़ादी के बाद प्रथम सरकार के कैबिनेट कानून और न्याय मंत्री के रूप में भी उन्होंने कार्य किया। इस समय उनका समान कानून संहिता लेकर आने का प्रयास सराहनीय था। 10 मार्च, 1945 को स्वराज को परिभाषित करते हुए उन्होंने कहा, ''अल्पसंख्यकों के सहयोग से, बहुसंख्यक का शासन चलाना ही स्वराज है।'' प्रथम भारतीय सरकार में शामिल होने के बाद उन्होंने कहा, ''हम सरकार में शामिल हुए हैं कांग्रेस में नहीं!''[17]

इस पूरे राजनीतिक जीवन के दौरान आंबेडकर ने हमेशा अपने लेख और कार्य के प्रति समर्पित रहे। एक मजदूर नेता के रूप में 9 सितंबर, 1943 को लेबर परिषद में भाषण देते हुए उन्होंने कहा, ''पूंजीवादी संसदीय प्रजातंत्र व्यवस्था में दो बातें अवश्य होती हैं, जो काम करते हैं उन्हें गरीबी में रहना पड़ता है और जो काम नहीं करते उनके पास अमानवीय पूंजी जमा हो जाती है। हर मजदूर को सुरक्षा और राष्ट्रीय संपत्ति में सहभागिता होने का आश्वासन मिलना आवश्यक है।'' मजदूरों एवं कामगारों के बीच में आंबेडकर हमेशा आते-जाते रहते थे।[18] धनबाद, रानीगंज और सीतापुर खदान में उनका आना-जाना रहता था। अपने लेखन Cast in India, Who are the Sudra, Thoughts of Pakistan' और 'Annihilation of Cast' में समय-समय पर अपनी बात को मजबूती से रखने का काम भी उन्होंने किया।

## 3. आंबेडकर का धार्मिक नवजागरण

आंबेडकर के हिन्दू धर्म संबंधित विचारों पर हमेशा बहस बना रहता है। अकादमिक जगत में उसे लोग अपने-अपने तरीके से परिभाषित करते रहते हैं। एक बार उन्होंने कहा था, ''धर्म इंसान के लिए है या इंसान धर्म के लिए है? हम हिंदू धर्म के एक अंग हैं या नहीं! इस बात पर हमें निर्णय कर लेना है।'' आंबेडकर ने अपनी मृत्यु के एकदम ठीक पहले बौद्ध धर्म को अपनाया, यह बात कहना एकदम गलत है। बड़ा ही रोचक विषय है, जहाँ एक ओर आंबेडकर 1930 में मंदिर प्रवेश आंदोलन का नेतृत्व कर रहे हैं, वहीं 1956 में उन्होंने बौद्ध धर्म को स्वीकार लिया। डॉ. कुशलदेव शास्त्री अपनी पुस्तक 'आर्य समाज और डॉ. आंबेडकर' में आंबेडकर को वैदिक धर्म व आर्य समाज में गहरी आस्था रखने वाला बताया गया है। आंबेडकर कई वैदिक विवाह में सम्मिलित हुए और उन्होंने बहिष्कृत समता संघ के मंच पर 1929 में वैदिक विवाह को सम्पन्न भी करवाया।[19] आंबेडकर के प्रारंभिक संरक्षक बड़ौदा नरेश सयाजी राव गायकवाड़ और कोल्हापुर नरेश राजर्षि शाहू दोनों ही आर्य समाज में निष्ठा रखते थे। यहाँ हम यह कह सकते हैं कि आंबेडकर के विचारों में हमेशा से बौद्ध धर्म के प्रति आस्था थी। लेकिन स्पृश्य समाज के कठोर व्यवहार और सामाजिक अस्वीकार्यता की वजह से आंबेडकर ने बौद्ध धर्म को स्वीकार किया। 11 अक्तूबर, 1950 को उन्होंने लिखा, ''मैंने गांधी जी को आश्वासन दिया था कि मैं हिंदू धर्म को कम से कम हानि पहुँचाने वाला मार्ग अपनाऊँगा। अस्पृश्य समाज इंसानियत पाने की कोशिश कर रहा है। सहूलियत पाने के लिए उसे अस्पृश्य बने रहना ठीक नहीं, बौद्ध धर्म समानता व मानवीयता का धर्म है।''[20] लेकिन 24 दिसम्बर, 1944 को मद्रास में आयोजित आम सभा में आंबेडकर ने वैदिक ग्रंथों की आलोचना भी की। इससे भी पहले 13 अक्तूबर, 1935 को मेवला में अपने धार्मिक विचारों को रखते हुए आंबेडकर कहते हैं, ''मैं हिंदू धर्म में पैदा हुआ क्यों किया मेरे हाथ में नहीं था, मगर मैं हिंदू धर्मावलंबी रहकर नहीं मारूँगा। सर्व सामान्य भी, हिंदू धर्म त्याग कर ऐसा धर्म अपने जो धार्मिक समता पर आधारित हो।''[21]

आंबेडकर की इस घोषणा के बाद उसी समय से मुस्लिम धर्म गुरुओं, ईसाई पादरी और सिक्ख गुरुओं का प्रस्ताव आने लगा। लिखित स्रोतों के आधार पर यह कहा जाता है कि आंबेडकर का झुकाव सिक्ख धर्म की तरफ था। 1936 में पुणे शहर में धर्म परिवर्तन के निर्णय पर गहराई से विचार करने हेतु एक सभा बुलाई गई। इस सभा में आंबेडकर से सार्वजनिक रूप से कहा, ''अब अगर भगवान भी स्वयं अवतरित हो जाएं तो भी अस्पृश्य समाज धर्म परिवर्तन के निर्णय से पीछे नहीं हटेगा।

1940 में एक भेंटवार्ता में उन्होंने बौद्ध धर्म की विशेषता बतलाते हुए कहा, ''बौद्ध धर्म में समानता और स्वाधीनता दोनों तत्त्वों का समावेश है, यह तत्त्व ब्राह्मण वर्ग को कतई पसंद नहीं था। अगर बौद्ध धर्म की विजय हो जाती तो समाज से जाति भेद खत्म हो जाता और साथ ही ब्राह्मण का स्थान भी डावांडोल हो जाता है। राजनीतिक शासन और शक्ति दोनों की मदद से सशक्त धर्म ब्राह्मण ने हथियाया और बौद्ध धर्म का विनाश किया। अहिंसा पर बुद्ध का तत्त्व ज्ञान था कि शस्त्र होते हुए भी शस्त्र का उपयोग विनाश के लिए न किया जाए।'' इसी प्रकार 24 सितम्बर, 1944 की सुबह मद्रास में बुद्धिवादी सभा की ओर से आयोजित आम सभा में उन्होंने वेद ग्रंथों की तीखी आलोचना की।'' हिंदू धर्म और समाज को शुद्ध करने के लिए और उसकी पुनर्रचना के लिए के लिए विचारों में परिवर्तन आवश्यक है। बौद्धिक विचार और बुद्धिवाद इनका संघर्ष स्वरूप का न होकर सामाजिक और राजनीतिक स्तर का है।

बुद्ध को सत्य निष्ठा और तर्क शुद्धता प्रिय थी। वेदांत जो कुछ भी है, बस यही सत्य है, यह ब्राह्मणों की निश्चित धारणा है। बुद्ध के विचार पुरोगामी हैं तो वैदिक विचार प्रतिगामी है और प्रगति तथा क्रांति विरोधी है, बुद्ध धर्म का नाश इस देश की महाक्षति है। 5 मई, 1950 को जनता समाचार-पत्र को एक साक्षात्कार में आंबेडकर ने कहा कि वह जल्द ही बौद्ध धर्म ग्रहण करेंगे। 25 मई, 1950 को कोलंबो यंगमैन बुद्धिस्ट असोसिएशन की संगोष्ठी में बौद्ध धर्म का उत्कर्ष और हास्य विषय पर बोलते हुए कहा, ''भले लगे बुद्ध धर्म विलुप्त हो गया है लेकिन इसकी जड़ें गहराई तक पहुँच चुकी हैं। बौद्ध धर्म हमेशा समता की बात करता है। बुद्ध के अलावा सभी ने अपने को मोक्षदाता बताया लेकिन बुद्ध ने स्वयं को यह दिखाने वाला कहा है। आंबेडकर के धार्मिक विचारों के अनुसार धर्म को तर्क की कसौटी पर, समता के आधार पर और आडम्बरों से मुक्त होना चाहिए। बुद्ध के दर्शन व ज्ञान में अपनी जिज्ञासाओं का उत्तर और अपनी सामाजिक समस्या का निदान, उन्होंने दोनों को पाया। 14 अक्तूबर, 1956 को अपने जीवन के अंतिम समय में अपने 3.5 लाख समर्थकों के साथ उन्होंने बौद्ध धर्म को अपना लिया।[22]

### निष्कर्ष :

अस्पृश्य समाज के लिए बाबासाहेब भीमराव आंबेडकर द्वारा किए गए कार्यों और उनके विचारों में प्रमुख रूप से धार्मिक भेदभाव के विरुद्ध प्रतिक्रिया, सामाजिक न्याय के लिए लड़ाई और सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था में दलितों के लिए राजनीतिक अधिकारों की माँग स्पष्ट दिखाई देती है। आंबेडकर जिस दौर में थे और जिस दौर में उन्होंने सामाजिक बुराइयों को उठाया, वह दौर सामाजिक गुलामी और राजनीतिक गुलामी का

दौर था। ऐसे ही नहीं आंबेडकर ने स्वराज को सामाजिक बुराइयों और भेदभाव के बिना असम्भव बताया है। आंबेडकर का सांस्कृतिक नवजागरण अतीत की गलतियों को सुधारते हुए अपने समाज की मूल समस्याओं से मुक्ति अपने अतीत के गौरवशाली धर्म का सम्मान करना ही था। आंबेडकर ने अस्पृश्य समाज की समस्याओं और स्थिति पर अपनी कलम के माध्यम से प्रकाश डाला है। इतना ही नहीं जातिगत बुराइयों को दूर करने के लिए उन्होंने अपनी लेखनी, सामाजिक, राजनीतिक और अंतरराष्ट्रीय मंचों से उजागर करने का प्रयास किया।

## संदर्भ सूची


1. शोधार्थी, इतिहास विभाग, सामाजिक विज्ञान संकाय, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
2. Daniela Rossi, Humanism and the Renaissance, (2007), The Year's Work in Modern Language Studies, Vol. 69, pp. 479
3. Kauleshwar Rai, British Attitude towards social Ferforms in Modern India (1979), Proceedings of the Indian History Congress, Vol. 40, pp. 904.
4. Kanta Kataria, Dr. B.R. Ambedkar as a National-Builder, Indian (2012), Journal of Political Science, Vol. 73, No. 04 (Oct-Dec), pp. 608
5. बसंत मून, डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर (1991), राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली, पृष्ठ 16.
6. वही, पृष्ठ 28.
7. H.S. Dwivedi, Ratan Sinha, Dr. Ambedkar : The Pioneer of Social Democracy (2005) Indian Journal of Political Science, Vol. 66, No. 3 (Jan-Sept.), pp. 664.
8. बसंत मुन, पृष्ठ 39.
9. Kanta Kataria, Dr. B.R. Ambedkar as a National-Builder, Indian (2012), Journal of Political Science, Vol. 73. N0. 04 (Oct-Dec), pp 616.
10. Kanta Kataria, pp.618.
11. N.S. Gehlot, Dr. Ambedkar, Mahatma Gandh and Dalit Movement (1993) Indian Journal of Political Science, Vol. 54 (Ju;-Dec) pp-387
12. Swaraj Basu, The Poona Pact and The Issue of Dalit Representation (2000), Proceedings of the Indian History Congress, Vol. 61, Vol 1, pp. 988.
13. Swaraj Basu, pp-100.
14. K.H. Cheruva Raju, Dr. B.R. Ambedkar and Making of the Constitution: A Case Study of Indian Federalism (2010), The Indian Journal of Political

Science, Vol. 52, No. 2 (Apr-Jun) pp-158.

15. Swaraj Basu, The Poona Pact and The Issue of Dalit Representation (2000), Proceedings of the Indian History Congress, Vol. 61, Vol. 1, pp.986.
16. Vidhu Verma, Colonialism and Liberation : Ambedkar's Quet for Distributive Justice, (1999) Economic and Political Weekly, Vol. 34, No. 39 (Sep.-Oct.), pp. 2808.
17. Vidhu Verma, pp. 2810.
18. K.H. Cheruva Raju, Dr. B.R. Ambedkar and Making of the Constitution: A Case Study of Indian Federalism (2010), The Indian Journal of Political Science, Vol. 52, No. 2 (Apr-Jun), pp. 1560.
19. डॉ. कुशलदेव शास्त्री, आर्य समाज और डॉ. आंबेडकर (2008) श्री घुड़मल प्रह्लाद कुमार आर्य धर्मार्थ न्यास, हिंडौन, राजस्थान, पृष्ठ 17.
20. Arundhati Roy, The Doctor and the Saint: Ambedkar, Gandhi and the Battle Against Caste (2014), A Journal of Politics and Culture, Vol. 1, pp 12-16
21. Gail Omvedt, Buddhism in India : Challenging Brahmanism and Caste (2003), Sage Pubication, London, pp. 217.
22. Dr. B.R. Ambedkar, Castes in India : Their Mechanism, Genesis and Development (1990), Bheem Patrika Publication, Jallander, Punjab, pp. 33.